स्वीडन में बर्फ की रोशनी

तेजी ग्रोवर

वह भारत से बाहर मेरे जीवन की पहली यात्रा थी। अलग-अलग भाषाओं के दस भारतीय कवियों को स्वीडन के कवि-लेखकों ने अपने देश बुलाया था। सभी लोग चौदह टापुओं को जोड़कर बने शहर स्टॉकहोम पहुँच रहे थे।

स्टॉकहोम बाल्टिक सागर के तट पर बसा है। बाल्टिक सागर में स्वीडन की सीमा में 24,000 छोटे-बड़े टापू हैं। कुछ टापुओं पर लोग रहते हैं, कुछ पर केवल जल पक्षी और पेड़। पानी से घिरे स्टॉकहोम शहर में मेपल, बलूत, भूर्ज और एस्पन नामक पेड़ों के रंग कैसे-कैसे बदल रहे थे! हमारी आँखों के सामने पेड़ हरे से लाल, पीले, सुनहरी और ताम्बई हो जाते थे। दिन की बेहद ठण्डी, नम धूप-छाँव में ऐसे पेड़ जो आपने कभी देखे न हों, पतझड़ में खाली हो जाने से पहले, क्या कमाल के रंग दिखा रहे थे! कई हज़ार झीलों का यह देश किस कदर सुन्दर दिखने लगा था। ऐसा तब तक होता जब तक दिन में धूप रहा करती। बहुत जल्दी फर और चीड़ को छोड़कर सारे पेड़ों से पत्ते गिर जाने वाले थे...।

उस यात्रा के दौरान हममें से कई लोगों के लिए "दिन" का अर्थ ही बदल जाने वाला था। उत्तरी ध्रुव और उसके आसपास के देशों में गर्मियों के मौसम में लगभग पूरे दिन सूरज रहता है और सर्दियों के महीनों में अधिकतर समय रात ही रहती है। जून के अन्त में स्टॉकहोम में दिन में लगभग 18 घण्टे दिन रहता है जबकि दिसम्बर के अन्त तक यह घटकर केवल 6 घण्टे रह जाता है। स्टॉकहोम उत्तरी ध्रुव के बहुत पास नहीं है। फिर भी सर्दियों के अँधेरों में दिन को महसूस करना मुश्किल था। हाँ, फिनलैण्ड की सर्दी में दिन का अधिकांश समय अँधेरे में डूबा रहता है। स्टॉकहोम में भी दिन के दो ढाई बजे अचानक जैसे कोई हम सब पर काला कम्बल फेंक देता हो...। जब हम मूर्खों की तरह अँधेरे से घिर जाते। घुप्प अँधेरा।

एक दिन भारत फोन करने के इरादे से मैं एक टेलीफोन बूथ में गई। मुझे अपने मित्र रुस्तम से बात करनी थी। उन्हें फोन पर बुलाना पड़ता था। उनके दफ्तर फोन कर मैंने कहा कि मैं दस मिनट बाद दोबारा फोन करूँगी। मैं बूथ में खड़ी रही। जब लगा कि दस मिनट हो गए, मैंने फिर फोन किया। तो जो सज्जन रुस्तम को बुलाने गए थे मुझ पर बिगड़ने लगे, "मैडम, रुस्तम जी ढाई घण्टे यहाँ बैठे रहे आपके फोन के लिए। अभी-अभी गए हैं।" मैं एकदम डर गई। यह हो क्या रहा है? क्या कोई भयानक सपना है? मैंने कहा, "प्लीज़ उन्हें एक बार फिर बुला दीजिए। मैं तुरन्त फोन कर रही हूँ।" अगली बार मैंने तुरन्त फोन किया, लेकिन मुझे बताया गया कि मैंने एक घण्टे बाद फोन किया था। मैं रुस्तम से बात नहीं कर पाई। फोन से पीछा छुड़ाकर बाहर निकली और फूट-फूट कर रोने लगी। अपने कमरे में पहुँचकर मैंने अपने स्वीडी मित्र जैक को फोन किया। बड़ी मुश्किल से मैं उसे बता पाई कि मैं समझ नहीं पा रही कि मेरे साथ क्या हो रहा है। समय का कोई एहसास मुझे हो ही नहीं रहा था। अकेले में बैठकर रुलाई फूट रही थी। दो दिन पहले एक ट्रेन भी छूट गई थी क्योंकि घड़ी देखकर भी कुछ पल्ले नहीं पड़ रहा था।

जैक हमारे मेज़बान थे। वे हमें समझाने लगे कि सर्दियों के अँधेरे में बहुत से लोगों को यह खास किस्म का स्वीडी "डिप्रेशन" हो जाया करता है। भारत लौटने पर निश्चित ही कुछ हफ्तों में हम लोग ठीक हो जाएँगे। उनका कहना था कि इसका कारण शायद हमारी "शारीरिक घड़ी" का टूट जाना है। रात के अँधेरे में सो जाना और सुबह के उजाले में जाग जाना क्या यही थी हमारी "शारीरिक घड़ी"?

खैर, उधर जैक और अन्य स्वीडी मित्र हमें झीलों और जंगलों से भरे देश में लम्बी यात्राएँ करवा रहे थे। कई जगह मीलों मील तक मैदान, जंगल, झील – लेकिन इंसानों की कोई आबादी नज़र नहीं आती थी। सड़क पार करते हुए अगर कोई दिख जाता, तो उससे कई मीटर पहले कार या बस वाले अपनी गाड़ियाँ रोक लेते थे। कई बार हम लोग सड़क पार करते समय कारों के निकल जाने का इंतज़ार करते। लेकिन हम हैरान रह जाते जब देखते कि गाड़ियाँ ही हमसे कुछ दूर रुककर हमारे निकल जाने का इन्तज़ार कर रही हैं।

हम जैसे-जैसे पतझड़ से सर्दी की ओर बढ़ रहे थे, अँधेरा हर दिन को खाए चला जा रहा था। यानी अब ठण्डी, नम धूप कम से कमतर होती जा रही थी। जैक टोमास, लार्श, बिर्गित्ता, अन्ना लिएना, ये सब हमारे स्वीडी दोस्त भी अँधेरे से घबराने लग गए थे। हमने पूछा वे लोग बसन्त आने तक कैसे जिएँगे? वे बोले, अभी कुछ ही दिन में देखिए क्या होता है।

अँधेरा बढ़ रहा था। हम दस लोग एक बड़ी-सी गाड़ी से गॉटन बर्ग से स्टॉकहोम की ओर बढ़ रहे थे। कभी कोई जानवर हाइवे पर गाड़ी के सामने आ जाता – कभी हिरण या लोमड़ कभी "एल्क" या खरगोश। "एल्क" तो स्वीडन की वैसी ही पहचान है जैसे हमारे यहाँ मोर। अँग्रेज़ी में उसे Moose कहते हैं। इस बीच अचानक प्रसन्ना बोले, "अरे वाह! बर्फ गिरने लगी है!" हम लोग घुप्प अँधेरी रात में गिरती बर्फ में सड़क के किनारे खड़े थे। सामने मैदान में बर्फ की पर्त जम चुकी थी। प्रसन्ना तो अपने जूते उतारकर तुरन्त बर्फ में भाग लिए... अन्ना लिएना कुछ दूर चलकर बर्फ पर पीठ के बल लेट गई। फिर उसने आसमान की ओर ताकते हुए लेटे-लेटे बाहों को बर्फ पर नीचे से ऊपर तक घुमाया। फिर वह उठी। और हमने देखा कि जहाँ वह लेटी थी उसके नीचे मनुष्य के आकार का एक सुन्दर फरिश्ता था। बाँहें घुमाने से बर्फ पर उसके पंख बन गए थे। अन्ना लिएना ने ठण्ड के स्वागत में बर्फ का पहला फरिश्ता हमें दिखा दिया था।

बर्फ के फाहे रुई की तरह हौले-होले गिर रहे थे। दूर तक पेड़ों की शाखों पर, मकानों की ढलवाँ टाइलों पर बर्फ ही बर्फ नज़र आने लगी थी। ज़मीन पर रोशनी गिर रही थी और ज़मीन से उठ रही थी सफेद, चमकती हुई बर्फ की रोशनी – काली रात में। लेकिन अब रात काली कहाँ थी... । हमें नहीं मालूम वह दिन था या रात। वह बर्फ की रोशनी हमें घेरे थी...। हम चाहते तो उसे दिन कह सकते थे। लेकिन स्वीडन के सबसे ज़्यादा चाहे जाने वाले कवि टोमास के शब्दों में मैं आपको यह रोशनी और भी अच्छे से दिखा सकती हूँ। अपनी एक कविता "सर्दियों में रात का शहर" में वे लिखते हैं:

ऐसा लग सकता है
कि जैसे बर्फ
रोशनी के सोने का ढंग हो

(यात्रा वृत्तांत, अक्टूबर 1997)

फोटो: इंटरनेट से साभार